फर्क जेनेटिक नहीं, एपिजेनेटिक है

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

वर्तमान भारतीय राजनैतिक और सामाजिक परिदृश्य में एक शब्द का भरपूर दुरुपयोग हुआ है। वह शब्द है डीएनए। डीएनए का मतलब है डीऑक्सी राइबोन्यूक्लिक एसिड। डीऑक्सी राइबोन्यूक्लिक एसिड हमारे जीन्स को बनाने वाला पदार्थ है। हम सब इस पदार्थ के साथ पैदा होते हैं, यह हमें अपने माता-पिता से विरासत में मिलता है। रोज़मर्रा की भाषा में किसी व्यक्ति की पूरी शख्सियत को परिभाषित करने के लिए इस शब्द के उपयोग की फैशन चल पड़ी है। एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने हाल में वक्तव्य दिया कि "सहिष्णुता भारत के डीएनए में है"। इसी प्रकार से एक अन्य माननीय ने एक पूरे राज्य के (करीब 10 करोड़) लोगों के बारे में कहा कि वे अपने डीएनए की वजह से ही पिछड़े और अविकसित हैं। जैसी कि अपेक्षा थी इस वक्तव्य की चहुं ओर आलोचना हुई कि यह असहाय लोगों पर एक अनुचित टिप्पणी है।

मुनासिब है कि हम उन्हें, और खुद को याद दिलाएं कि क्यों इन संदर्भों में डीएनए शब्द का उपयोग गलत है। हम सारे भारतीय ही नहीं बल्कि इस ग्रह पर रहने वाले सारे मनुष्य चिम्पैंज़ी, बोनोबो और गोरिल्ला जैसे प्रायमेट्स से विकसित हुए हैं। जब हम समूची डीएनए श्रृंखला में क्षारों के क्रम का अध्ययन करते हैं इस बात की पुष्टि होती है कि हम उनसे विकसित हुए हैं और वे उनसे भी पहले के स्तनधारियों से विकसित हुए हैं। डीएनए की पूरी श्रृंखला को जीनोम कहते हैं। हम इस जीनोम के साथ ही जन्म लेते हैं। मनुष्यों के जीनोम का गहराई से अध्ययन करके उसकी तुलना प्रायमेट्स के जीनोम से करना एक बुनियादी जीव वैज्ञानिक विधि है जिसकी मदद से हम अपने वंश वृक्ष का निर्माण करते हैं और यह पता करते हैं कि हमारे पूर्वज कौन रहे हैं।

जब ऐसी तुलना और विश्लेषण किया गया तो कुछ चौंकाने वाली बातें पता चलीं। (क) कि हमारा और चिम्पैंज़ी का जीनोम 98 प्रतिशत एक जैसा है। (ख) उससे भी ज़्यादा गौरतलब बात यह थी कि पृथ्वी के सारे मनुष्यों का जीनोम 99.9 प्रतिशत एक जैसा है, चाहे वे किसी भी समुदाय, नस्ल, रंग के हों और चाहे किसी भी महाद्वीप के निवासी हों। इससे पता यह चलता है कि जैविक रूप से, जेनेटिक्स की दृष्टि से, डीएनए के लिहाज़ से सारे मनुष्य एक जैसे हैं। अर्थात समुदाय, जाति, धर्म और मनुष्यों को विभाजित करने के अन्य तरीके सामाजिक संरचनाएं हैं, जैविक नहीं। जैव विकास का जीव विज्ञान, जो हमारे डीएनए में पढ़ा जा सकता है, हमारे बीच कोई भेद नहीं करता। दरअसल मानव जीनोम प्रोजेक्ट ने संस्कृत की उस उक्ति को शब्दशः सही साबित किया है कि वसुधैव कुटुंबकम्।

फिर भी, इसके बावजूद हम देखते हैं कि हूबहू एक से जुड़वां बच्चों के व्यक्तित्व और आदतों में फर्क होते हैं। हूबहू एक समान जुड़वां का मतलब है कि ऐसे बच्चे एक ही निषेचित अंडे (ज़ायगोट) से पैदा होते हैं और इनमें पूरा डीएनए एक जैसा होता है। फिर यह कैसे होता है कि हूबहू एक-से डीएनए से लैस होने के बावजूद उनमें अंतर होते हैं? वर्ष 1940 में ही ब्रिटिश वैज्ञानिक चार्ल्स वैडिंगटन ने फलभक्षी मक्खी (फ्रूट फ्लाई) के पंखों के विकास का अध्ययन करते हुए, ऐसे अंतरों पर ध्यान दिया था और सुझाया था कि (निषेचित अंडे से) शरीर के विकास के दौरान जीन्स की अभिव्यक्ति में अंतर आ जाते हैं। इनकी वजह से फीनोटाइप में अंतर आ सकते हैं। फीनोटाइप यानी शरीर का प्रत्यक्ष रूप। यह जीनोटाइप से अलग होता है - जीनोटाइप यानी किसी जीव की जेनेटिक बनावट। जीन्स की अभिव्यक्ति में ऐसे परिवर्तनों को एपिजेनेटिक्स कहते हैं। 'एपि' उपसर्ग का मतलब होता ऊपर - एपिजेनेटिक्स का अर्थ होगा 'जेनेटिक्स के ऊपर'।

एम. एफ. फ्रेगा के नेतृत्व में युरोप, यू.के और यूएस.ए. के वैज्ञानिकों के एक दल ने 80 हूबहू समान जुड़वां बच्चों

के एक अध्ययन के आधार पर यह समझने का प्रयास किया था कि एपिजेनेटिक्स के ज़रिए फर्क कैसे पड़ते हैं। उन्होंने पाया था कि एक ही जीनोटाइप साझा करने के बावजूद हूबहू समान जुड़वां हूबहू एक समान नहीं होते; उनमें कई फीनोटायपिक अंतर देखे गए। कई हूबहू समान जुड़वां शरीर के डील-डौल के लिहाज़ से भिन्न थे। ऐसा भी देखा गया कि दो जुड़वां में से एक किसी रोग के प्रति संवेदी होता है जबकि दूसरा नहीं। जब वैज्ञानिकों ने उनके डीएनए के क्रम का विश्लेषण किया तो पता चला कि समय के साथ जुड़वां बच्चों के बीच अंतर पैदा होने लगते हैं। डीएनए की श्रृंखला चार क्षारों (ए, टी, सी और जी) की लड़ी होती है जो अलग-अलग क्रम में जुड़े होते हैं। जुड़वां के बीच ज़्यादा अंतर क्षार इकाई सी के मामले में देखे गए। कई सारे सी क्षारों में रासायनिक परिवर्तन हुए थे। इनसे मेथिल समूह जुड़ गया था। इसके अलावा एक प्रोटीन हिस्टोन में भी अंतर देखे गए। हिस्टोन नामक प्रोटीन डीएनए को कोशिका के केंद्रक में ठीक तरह से फोल्ड करने में मदद करता है।

सी क्षार का मेथिलीकरण (सी-मेथिलीकरण) और हिस्टोन परिवर्तन डीएनए में एपिजेनेटिक बदलावों के प्रमुख चिंह होते हैं। यह बात सबसे पहले 1975 में सुझाई गई थी। ये कैसे होते हैं और किन कारकों की वजह से होते हैं, इसका विवरण *नेचर जेनेटिक्स* नामक शोध पत्रिका में 2005 में प्रकाशित हुआ था। ऐसे परिवर्तन पर्यावरणीय कारणों से हो सकते हैं, जैसे गर्मी, समुद्र सतह से ऊंचाई, नमी वगैरह। इसी प्रकार से भोजन भी डीएनए मेथिलीकरण की स्थिति पर असर डालता है। डीएनए मेथिलीकरण के साथ-साथ फीनोटाइप में भी बदलाव आते हैं। यह बात चूहों के साथ प्रयोग करके दर्शाई जा चुकी है। जैसे-जैसे किसी जीव की उम्र बढ़ती है, उसका एपिजेनेटिक चित्र भी बदलता रहता है जिसकी वजह से उसकी शारीरिक बनावट में परिवर्तन होते हैं, शारीरिक क्रियाओं में बदलाव आते हैं, बीमारियों के प्रति उसकी संवेदनशीलता बदलती है, वगैरह।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जब स्त्री गर्भधारण के लिए तैयार होती है और उसकी अंडाणु कोशिकाएं बनती हैं, तो उसके द्वारा अपने जीवनकाल में अर्जित किए गए लगभग सारे एपिजेनेटिक परिवर्तनों को समाप्त कर दिया जाता है। यानी अंडाणु का जीनोम परिवर्तनों से मुक्त होता है। इसी प्रकार से जब पुरुष के शुक्राणु बनते हैं तो उनमें भी एपिजेनेटिक परिवर्तन साफ कर दिए जाते हैं। अर्थात संतान को एपिजेनेटिक परिवर्तन विरासत में नहीं मिलते। उसे तो माता-पिता का खालिस जीनोम प्राप्त होता है। संतान अपने पर्यावरण, भोजन, जीवन की परिस्थितियों से स्वयं एपिजेनेटिक परिवर्तन हासिल करती है।

इसका मतलब है कि खराब परिवेशों में, अपर्याप्त पोषण और आर्थिक वंचनाओं के बीच पले लोगों के एपिजेनेटिक लक्षण उन लोगों से अलग होते हैं जो स्वच्छ वातावरण में अच्छा पोषण पाकर बड़े होते हैं। दोनों को विरासत में तो एक-सा डीएनए मिलता है। अंतर तो एपिजेनेटिक परिवर्तनों में होते हैं। यदि हम राजनैतिक व आर्थिक साधनों के ज़रिए लोगों की जीवन की परिस्थितियों में सुधार कर सकें तो कोई राज्य या लोग 'बीमारु' नहीं होते। ***(स्रोत फीचर्स)***

वर्ग पहेली 136 का हल

सी	ए	फ	सी	■	द	बा	व
ज़ि	■	च्च	■	गा	मा	■	ज्र
य	■	र	म	फो	र्ड	■	पा
म	य	■	■	न	■	घा	त
■	■	प	रा	स	र	ण	■
से	म	■	त्रि	■	■	स	म
ल्सि	■	■	च	र्व	ण	क	■
य	■	बौ	र	■	ठो	■	शी
स	वा	ना	■	प	र	का	र